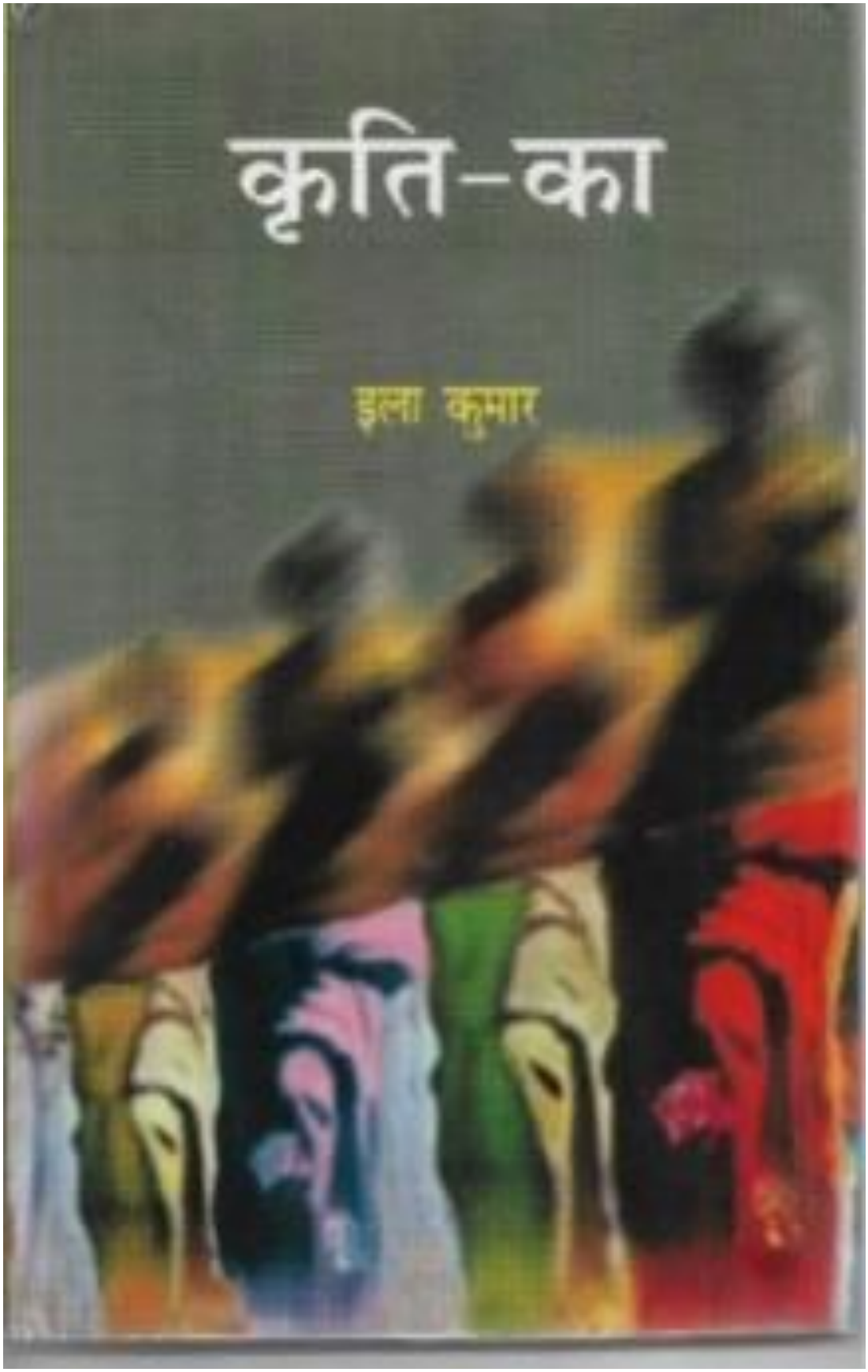
कृति-का
इला कुमार

पुस्तक-वार्ता

अंक १८
मई - जून २००६

आंतरिक व्यवस्थाओं की चरमराहट

राजेश्वर वशिष्ठ

इला कुमार मूलतः कवयित्री हैं। चमकदार, सुसंस्कृत भाषा में जरा जटिल-सी कविताएँ लिखती हैं। योगवसिष्ठ के दर्शन से खासी प्रभावित हैं और विवाह के बाद से ही 'रेल-परिवार' से जुड़ी हैं। परिचितों को कृति-का में उनकी निजी डायरी के पृष्ठ ही अधिक दिखाई दें तो वह संयोग नहीं है। हो सकता है वस्तुस्थिति भी हो क्योंकि उपन्यास या कहानी लिखते हुए निजी अनुभवों को किसी उद्देश्य या फैन्टेसी के मुताबिक संयोजित करना ही पड़ता है। कृति-का में इला ने नवविवाहिता नारी के, पति के काम-काज के बीच उलझे क्षणों का सुन्दर और रोचक वर्णन किया है। इंजीनियर पति बड़ी कर्तव्यनिष्ठा के साथ, घर और बाहर के जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है और पत्नी, पति की निष्ठा और लगन से प्रभावित होकर भी अपना स्त्रीतुल्य व्यवहार आसानी से नहीं बदल पाती। डोंगापासी के भव्य सरकारी मकान में पति की अनुपस्थिति में उसे अपने परिवारजनों की रह-रहकर याद आती है।

कृति-का धीरे-धीरे मैच्योर होती है, खूब उपन्यास, कहानियाँ पढ़ती है और महसूस करती है ह अपने बैच के टॉपर जयंत एक कर्मठ टैक्नोक्रेट में तब्दील हो रहे थे। बिना इस बात के भविष्य को टटोले कि रेलवे के बीचोंबीच स्थित सोशियो-इकॉनॉमिक संरचना एक सिविल इंजीनियर को मात्र एक कर्मठ इंजीनियर नहीं देखना चाहती, वह उसे एक काइयाँ और निर्मम प्रशासक के रूप में भी ढालना चाहती है। इला कुमार इस उपन्यास में रेलवे की लालफीताशाही को स्थान-स्थान पर इंगित करती हैं पर उन्होंने आलोचना की सीमा की पहचान नहीं खोने दी है, वे निश्चित रूप से जानती हैं उन्हें कितना प्रहार करना है। पच्चीस वर्ष के रेल-परिवार से जुड़ाव के अनुभव ने उन्हें भी इतना प्रोफेशनल बना दिया है कि वह उतना ही कहती हैं जितना रेल, पति और मित्रों को बुरा न लगे। कहानी को आगे बढ़ाते हुए कृति-का कर्मचारियों की पत्नियों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने के लिए 'महिला समिति' से जुड़कर समाज सेवा के कार्य में भी योगदान देती हैं। आनन्द मेला लगवाती हैं जो बेहद सफल रहता है। कृति-का अन्य अफसरों की पत्नियों के बीच अपने को सदा अकेला पाती है क्योंकि उनमें से अधिकांश मानसिक स्तर बेहद साधारण है। जब उसे रचना मिश्रा जैसी उपनिषद की ज्ञाता मिलती है तो वह सुखद आश्चर्य से भर उठती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने ट्रांसफर को हमें अद्वैतिक प्रस्थान की तरह लेना चाहिए। बंगले के कमरों को अपना मानकर रह रहे हैं, सारी कॉलोनी पूरा क्लब, स्वीमिंग पूल सब अपना लगता है। लगता है कि यह सब हमारा है। लेकिन ऑर्डर आ जाते हैं, और हम दूसरे शहर को चल पड़ते हैं। जैसे जीव एक शरीर को छोड़कर एक लोक से दूसरे लोक जाता है।

रेलवे में भी देश के किसी भी सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान जैसी ही लालफीता शाही, अंधेरगर्दी या बदइंतजामी होगी इसे भारत में कौन नहीं जानता। कृति-का सच कह पाए या न कह पाए यह उसकी परेशानी है पर सरकारी विभागों में चापलूस, घूसखोर और अकर्मण्य व्यक्ति ही ऊपर तक पहुँच पाते हैं यह हमारे समाज का भयावह सत्य है। सहमी-सी कृतिका कुछेक कटाक्ष जयंत के नाम से नहीं करती ह नए छायापात्र को कहती है ह सुव्रतवासन। वह जयंत की तरह टॉपर भी है, साइट पर बगैर थके काम भी करवाता है और यूनियन के द्वारा न्योती जा रही मुसीबतों का निपटारा भी करवाता है। राजनैतिक दखल के चलते सुव्रतवासन के बुरे दिन आते हैं और उसका कैरियर चौपट हो जाता है। कृतिका कहती है ह भविष्य में यह एक सत्य, प्रथा की तरह उभर आएगा कि अपनी ड्यूटी करो, पास-पीटीओ इस्तेमाल करो, रेस्ट हाउस और सैलून का सुख उठाओ, बोर्ड की पोस्टिंग और फॉरेन ट्रिप के मजे लो, रेलवे का नमक खाओ, लेकिन! लेकिन ऐसे निर्णयों को टाल दो, नकार दो, जिनमें रेल-हित की बात छुपी हो। जयंत के सहकर्मी आशुतोष चटर्जी के माध्यम से कृतिका रेल-इतिहास भी मँगवाकर पढ़ती है। इससे उस संवेदनशील नायिका की कठिनाइयाँ बढ़ती ही चली जाती हैं। कृतिका एक नए मानसिक धरातल पर प्रविष्ट हो रही थी वह नए तथ्यों से परिचित होने के क्रम में सत्यों, भुलावों, छलावों से रचित भूल-भुलैया के बीच घिरती जा रही थी। उसे अब पूरी प्रणाली एकदम अलग ढंग की दिखती। सालों-साल अपने-अपने गुरूर में डूबे अफसर मूर्ख नजर आते। महीनों-महीना लगातार रेल की उन्नति की खातिर खटते अफसर बेचारे नजर आते। अच्छी क्रीम पोस्टिंग्स पर जमे रहनेवाले, फॉरेन ट्रिप पर सरकारी खर्च पर जानेवाले अफसर, जो लौटकर अपनी उस ट्रेनिंग की बदौलत रेल को एक जर्रा भी फायदा नहीं पहुँचाया करते, वे सभी कृतिका को काइयाँ और धूर्त नजर आते भविष्य का अनुमान कर कृति-का दुख में काँप-सी जाती। उसे लगता सूर्य के नीचे और पृथ्वी के ऊपर वह केवल अकेली है।

इला कुमार का यह उपन्यास रेलवे की आंतरिक व्यवस्थाओं की चरमराहट का हल्का-सा आभास जरूर देता है पर उपन्यास के केन्द्र में केवल यही नहीं है। इस उपन्यास में कवयित्री का बेहद संवेदनशील, तराशा हुआ गद्य है जो कविता-सा आनन्द देता है।

कृति-का/इला कुमार/वाणी प्रकाशन, दिल्ली/मूल्य १२५ रु.

समीक्षक और कवि, कोलकाता में निवास।

समीक्षा

उपन्यास : कृति-का

आंतरिक व्यवस्थाओं की चरमराहट : राजेश्वर वशिष्ठ

इला कुमार मूलतः कवयित्री हैं। चमकदार, सुसंस्कृत भाषा में जरा जटिल-सी कविताएँ लिखती हैं। योगवसिष्ठ के दर्शन से खासी प्रभावित हैं और विवाह के बाद से ही 'रेल-परिवार' से जुड़ी हैं। परिचितों को कृति-का में उनकी निजी डायरी के पृष्ठ ही अधिक दिखाई दे ंतो यह संयोग नहीं है। हो सकता है वस्तुस्थिति भी हो क्योंकि उपन्यास या कहानी लिखते हुए निजी अनुभवों को किसी उद्देश्य या फेन्टेसी के मुताबिक संयोजित करना ही पड़ता है। कृति-का में इला ने नवविवाहिता नारी के, पति के काम-काज के बीच उलझे क्षणों का सुन्दर और रोचक वर्णन किया है। इंजीनियर पति बड़ी कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ, घर और बाहर के जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है और पत्नी, पति की निष्ठा और लगन से प्रभावित होकर भी अपना स्त्रीतुल्य व्यवहार आसानी से नहीं बदल पाती। डोंगापासी के भव्य सरकारी मकान में पति की अनुपस्थिति में उसे अपने परिवारजनों की रह-रहकर याद आती है।

कृति-का धीरे-धीरे मैच्योर होती है, खूब उपन्यास, कहानियाँ पढ़ती है और महसूस करती है अपने बैच के टॉपर जयंत एक कर्मठ टैक्नोक्रेट में तब्दील हो रहे थे। बिना इस बात के भविष्य को टटोले कि रेलवे के बीचों बीच स्थित सोशियो-इकॉनॉमिक संरचना एक सिविल इंजीनियर को मात्र एक कर्मठ इंजीनियर नहीं देखना चाहती, वह उसे एक काइयाँ और निर्मम प्रशासक के रूप में भी ढालना चाहती है। इला कुमार इस उपन्यास में रेलवे की लालफीताशाही को स्थान-स्थान पर इंगित करती हैं पर उन्होंने आलोचना की सीमा की पहचान नहीं खाने दी है, वे निश्चित रूप से जानती हैं कि उन्हें कितना प्रहार करना है। पच्चीस वर्ष के रेल-परिवार से जुड़ाव के अनुभव ने उन्हें भी इतना प्रोफेशनल बना दिया है कि वह उतना ही कहती हैं जितना रेल, पति और मित्रों को बुरा न लगे। कहानी को आगे बढ़ाते हुए कृति-का कर्मचारियों की पत्नियों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने के लिए 'महिला समिति' से जुड़कर समाज सेवा के कार्य में भी योगदान देती हैं। आनन्द मेला लगवाती हैं जो बेहद सफल रहता है। कृति-का अन्य अफसरों की पत्नियों के बीच अपने को सदा अकेला पाती है क्योंकि उनमें से अधिकांश मानसिक स्तर बेहद साधारण है। जब उसे रचना मिश्रा जैसी उपनिषद की ज्ञाता मिलती है तो वह सुखद आश्चर्य से भर उठती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने ट्रांसफर को हमें अद्वैतिक प्रस्थान की तरह लेना चाहिए। बंगले के कमरों को अपना मानकर रह रहे हैं, सारी कॉलोनी, पूरा क्लब, स्वीमिंग पूल सब अपना लगता है। लगता है कि यह सब हमारा है। लेकिन ऑर्डर आ जाते हैं और हम दूसरे शहर को चल पड़ते हैं। जैसे जीव एक शरीर को छोड़कर एक लोक से दूसरे लोक जाता है।

रेलवे में भी देश के किसी भी सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान जैसी ही लालफीता शाही, अंधेरगर्दी या बदइंतजामी होगी इसे भारत में कौन नहीं जानता। कृति-का सच कह पाए या न कह पाए यह उसकी परेशानी है पर सरकारी विभागों में चापलूस, घूसखोर और अकर्मण्य व्यक्ति ही ऊपर तक पहुँच पाते हैं, यह हमारे समाज का भयावह सत्य है। सहमी-सी कृतिका कुछेक कटाक्ष जयंत के नाम से नहीं करती, नए छायापात्र को कहती है, सुक्रतवासन। वह जयंत की तरह टॉपर भी है, साइट पर बगैर थके काम भी करवाता है और यूनियन के द्वारा न्योती जा रही मुसीबतों का निपटारा भी करवाता है। राजनैतिक दखल के चलते सुक्रतवासन के बुरे दिन आते हैं और उसका कैरियर चौपट हो जाता है। कृतिका कहती है- भविष्य में यह

एक सत्य, प्रथा की तरह उभर आएगा कि अपनी ड्यूटी करो, पास-पीटीओ इस्तेमाल करो, रेस्ट हाउस और सैलून का सुख उठाओ, बोर्ड की पोस्टिंग और फॉरेन ट्रिप के मजे लो, रेलवे का नमक खाओ, लेकिन! ल्ेकिन ऐसे निर्णयों को टाल दो, नकार दो, जिनमें रेल-हित की बात छुपी हो। जयंत के सहकर्मी आशुतोष चटर्जी के माध्यम से कृतिका रेल-इतिहास भी मँगवाकर पढ़ती है। इससे उस संवेदनशील नायिका की कठिनाइयाँ बढ़ती ही चली जाती हैं। कृतिका एक नए मानसिक धरातल पर प्रविष्ट हो रही थी। वह नए तथ्यों से परिचित होने के क्रम में सत्यों, भुलावों, छलावों से रचित भूल-भुलैया के बीच घिरती जा रही थी। उसे अब पूरी प्रणाली एकदम अलग ढंग की दिखती। सालों-साल अपने-अपने गुरूर में डूबे अफसर मूर्ख नजर आते। महीनों-महीना लगातार रेल की उन्नति की खातिर खटते अफसर बेचारे नजर आते। अच्छी क्रीम पोस्टिंग्स पर जमे रहने वाले, फॉरेन ट्रिप पर सरकारी खर्च पर जाने वाले अफसर, जो लौटकर अपनी उस ट्रेनिंग की बदौलीत रेल को एक जर्रा भी फायदा नहीं पहुँचाया करते, वे सभी कृतिका को काइयाँ और धूर्त नजर आते। भविष्य का अनुमान कर कृति-का दुख में काँप-सी जाती। उसे लगता सूर्य के नीचे और पृथ्वी के ऊपर वह केवल अकेली है।

इला कुमार का यह उपन्यास रेलवे की आंतरिक व्यवस्थाओं की चरमराहट का हल्का-सा आभास जरूर देता है पर उपन्यास के केन्द्र में केवल यही नहीं है। इस उपन्यास में कवयित्री का बेहद संवेदनशील, तराशा हुआ गद्य है जो कविता-सा आनन्द देता है।

- - - - -

कृति-का : इला कुमार

वाणी प्रकाशन, दिल्ली

मूल्य 125 रुपये

राजेश्वर वशिष्ठ: समीक्षक और कवि, कोलकाता में निवास